उपसंहार

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों ने अपने नाटकों में भावुकता तथा रूमानियत के स्थान पर बौद्धिकता, तार्किकता और अनुचेतनात्मक यथार्थ को आश्रय दिया है। इसके अलावा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा मानवता के साथ-साथ ही फ्रायड, मार्क्स आदि के सिद्धांतों को अपनी नाट्य- रचना में स्थान देना आरंभ किया। इस प्रक्रिया में कहीं परंपरा का अनुशीलन किया गया, कहीं उसे ग्रहण किया गया, तो कहीं उसका त्याग किया गया है। जिन परंपराओं को ग्रहण किया गया उनसे पौराणिक कथाएँ तथा ऐतिहासिक आख्यान लिए गए, किन्तु इन परंपराओं को ग्रहण करने तथा इनके प्रयोग करने का उद्देश्य इतिहास की पुनरावृत्ति करना नहीं था, बल्कि आधुनिकता को प्रकट करना था। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों ने आधुनिक जीवन तथा उसकी समस्याओं को प्रकट करने के लिए जो एक सशक्त माध्यम चुना वह है मिथकीयता, जिसे पौराणिक कथाओं तथा ऐतिहासिक आख्यानों के साथ समावेश कर दिखाया गया है। इसके अलावा बिम्ब और प्रतीक का भी सहारा लिया गया है। यहाँ मिथकीय, बिम्ब और प्रतीक तीनों का प्रयोग नाटकों में अतीत को वर्तमान से जोड़ने का काम करता है। जिसका आखिरी उद्देश्य आधुनिक युग-परवेश को व्याख्यायित करना है।

स्वतन्त्रतापूर्व हिंदी नाटकों में भी संवेदनात्मक नाट्य-रचनाएँ लिखी गई हैं, किन्तु स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों के भाव-बोध, वस्तु तथा शिल्प इनसे भिन्न हैं। इन नाटकों की अपनी ही विशेषता है जैसे कि ये नाटक आधुनिक महानगरीय जीवन एवं उनकी विसंगतियों को प्रकट करना, पाश्चात्य जीवन शैली से प्रेरित जीवन की पड़ताल करना तथा व्यक्तिगत जीवन के बाह्य तथा आंतरिक द्वंद्वों को उद्घाटित करना है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की बात करें तो इसमें हम आधुनिकता को पश्चिमी जीवन-दृष्टि से प्रभावित पाते हैं। आधुनिकता का पाश्चात्य रूप आधुनिकता के भारतीय रूप को समझने में सहायक हो सकता है, लेकिन यह भारतीय जीवन का मूल्य नहीं हो सकता है, क्योंकि

दोनों की अपनी अलग ही एक परंपरागत धारणा रही है । स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटककारों ने आधुनिकता के विभिन्न रूपों को चित्रित करने के लिए परंपरागत कथा और चरित्रों का सहारा लिया है। किन्तु परंपरागत प्राचीन नाट्य कृतियों में जो नैराश्य दिखता है, वह आधुनिक नाट्य कृतियों से भिन्न है। वह इस रूप में भिन्न है कि आधुनिक नाटकों में बौद्धिकता और चिंतन के विभिन्न धरातल पर ही इसे स्वीकार किया गया है।

आधुनिकता की बात करें तो ऐतिहासिक रूप से इसके दो दौर रहे हैं जो घटनात्मक इतिहास को निर्मित करते हैं। एक स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान, दूसरा स्वतंत्रता के बाद। इसीलिए स्वतंत्रता के बाद की आधुनिकता ने परंपरागत जीवन की लगभग सभी स्थापित मान्यताओं को बदलकर रख दिया। इस आधुनिकता ने नाट्य कृतियों के साथ-साथ लगभग सभी विधाओं को एक नवीन विषय की ओर इंगित किया। भावबोध और जीवन का यह आधुनिक और व्यापक परिप्रेक्ष्य था। यह व्यापक परिप्रेक्ष्य था मानव का अकेलापन, असुरक्षा, आत्म-निर्वासन, परिवारों का विघटन, नगरीकरण, औद्योगीकरण आदि।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक का प्रारंभ जगदीश चंद्र माथुर द्वारा रचित नाटक 'कोणार्क' से माना जाता है। कथ्य के अतिरिक्त इस नाटक की जो विशेषता है वह चरित्र-सृजन के नए आयामों को देने में है। जिससे इसे एक ऐतिहासिक नाट्य उपलब्धि ही माना गया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक में आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति विभिन्न नाटककारों के नाटकों में देखी जा सकती है। जगदीश चंद्र माथुर के अतिरिक्त हिंदी नाटक के छठे दशक में धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' जो एक क्लासिकल रचना मानी जाती है । महाभारत और उनके पात्रों के संदर्भो में द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके बाद की विभीषिकाओं का चित्रण किया है। आधुनिक मानव की नीति और राजनीति से उत्पन्न त्रासदी को परंपरागत ऐतिहासिक पौराणिक पात्रों की मदद से सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है । इसके अलावा लक्ष्मीनारायण लाल का 'अंधा कुआ', मादा कैक्टस' आदि ऐसे नाटक हैं जिनमें हम आधुनिक जीवन के भाव-बोध देख सकते हैं। इसी दशक में मोहन राकेश के नाटकों का पदार्पण

होता है। जिन्हें आधुनिक नाटक का अग्रदूत कहा जाता है। सर्वप्रथम वे 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक लेकर आते हैं, जो कालिदास के जीवन पर आधारित है। नाट्य-कथा मिथकीय है, जो आधुनिक मानव और आज के रचनाकार के द्वंद्वात्मक जीवन को चित्रित करती है। साथ ही इस नाटक में मल्लिका के रूप में एक परंपरागत और आधुनिक नारी, दोनों ही रूपों का भी दर्शन होता है। सातवें दशक में उनका दूसरा नाटक 'लहरों के राजहंस' प्रकाशित होता है। जिसमें बुद्ध के भाई नन्द और सुंदरी की कथा कही गई है, किन्तु उससे बढ़कर यह कथा एक द्वंद्व की स्थिति में फंसे एक आधुनिक मानव की कथा है। इसी दशक में इनका नाटक 'आधे-अधूरे' भी प्रकाशित होता है। जो एक मध्यवर्गीय परिवार के विघटन और अधूरेपन की कथा को प्रस्तुत करता है। सातवें दशक में ही ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग' आता है, जो भ्रष्ट राजनीति और सामाजिक व्यवस्था की पोल को प्रतीकों और व्यंग्यों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त इस दशक के कई ऐसे नाटक भी हैं, जो आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रकट करते हैं। सातवें दशक के बाद से आठवें दशक में काफी हिंदी नाटककारों और नाटकों की संख्या बढती गई। नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी अधिक समृद्ध होती गई। इस दशक के जो विशेष नाटककार और उनके नाटक हैं वे हैं- रमेश बक्षी, जिनका नाटक है 'देवयानी का कहना है', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', मणि मधुकर का 'रस गन्धर्व', मुद्राराक्षस का 'योर्स फेथफुली', नरेंद्र कोहली का 'शम्बूक की हत्या' और शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य' आदि। इन नाटकों में परंपरा का सार्थक प्रयोग है, प्रतीक और बिम्ब हैं, जो आधुनिक जीवन और उनकी विसंगतियों को बखूबी प्रकट करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर इन हिंदी नाटककारों के मध्य हिंदी नाटक को एक दिशा देने का जो सबसे विशेष कार्य किया गया है, जिनके नाटकों ने आधुनिक समाज, परिवार, व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक जीवन की गहराई से पड़ताल की वह हैं मोहन राकेश और उनके नाटक। मोहन राकेश की ही नाट्य-परंपरा को आगे बढ़ाने का काम नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने 70 के दशक में किया। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों के कथानक और पात्रों के चरित्रों में भी परंपरा और आधुनिकता के स्वभावगत गुण देखने को मिल

जाते हैं। मोहन राकेश के नाटकों का समाज, परिवार या व्यक्ति के चरित्र को देखें तो वे पूर्णतः खंडित नहीं हुए प्रतीत होते हैं। किसी न किसी में उसका दायित्व-बोध बचा हुआ दिखता है। या कहें तो कहीं न कहीं थोड़ी बहुत एक उम्मीद या आपसी लगाव दिखता है। किन्तु सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनके नाटकों का जो समाज, परिवार और व्यक्ति है, वह है तो वही मोहन राकेश के नाटकों जैसा ही, किन्तु अब परिस्थितियाँ और भी कठिन हो चुकी हैं। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों के पात्रों ने पूर्णतः अपने परंपरागत चरित्र को त्याग दिया है, जैसे कि खंडित व्यक्तित्व, आंतरिक द्वंद्व और बिखराव अपने चरम पर हैं। आधुनिक जीवन का भयावह स्वरूप जिसे सभी मनुष्यों ने अपना लिया है। किसी में किसी के प्रति कोई लगाव या मोह नहीं दिखता है। प्रेम मांसल हो चुका है। हर एक रिश्ते का आधार लाभ और हानि पर टिका हुआ है। दोनों ही नाटककारों के नाटकों में परंपरा और आधुनिकता संबंधी तत्वों को संदर्भों के माध्यम से समझें तो नाटक में परंपरा और आधुनिकता संबंधी अवधारणा को और भी बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

कहते हैं हिंदी नाटक को एक सृजनात्मक, व्यापक और ठोस समग्र-सामूहिक कला के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय मोहन राकेश और उनके नाटकों को ही जाता है। यूँ तो उन्होंने अपने अल्प जीवन काल में तीन नाटकों और एक अधूरे नाटक का सृजन किया है, किन्तु ये तीनों नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक भारतीय समाज, परिवार और व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्वों को प्रकट करने में काफी हद तक सफल हैं। उसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने कुल 10 नाटकों के माध्यम से उन्हीं आधुनिक सवालों को उठाया है और उन्हीं समस्याओं को चित्रित किया है जिसे मोहन राकेश ने अपने नाटकों में उठाया है। किन्तु सुरेन्द्र वर्मा ने इन समस्याओं और सवालों को और भी प्रखर और स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। उनके दस नाटक इस प्रकार हैं- 'द्रौपदी' (1972), 'सेतुबंध'(1972),'नायक खलनायक विदूषक'(1972),'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'(1975), 'आठवां सर्ग'(1976), 'छोटे सैयद बड़े सैयद'(1982),

'एक दूनी एक' (1987), 'शकुन्तला की अंगूठी'(1990), 'कैद-ए-हयात'(1993),और 'रति का कंगन'(2010)।

मोहन राकेश ने मात्र तीन ही नाटक लिखे हैं, वहीं दूसरी ओर सुरेन्द्र वर्मा ने कुल दस नाटकों का लेखन किया है। अतः दोनों के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। मोहन राकेश के प्रथम दो नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' के कथानक और पात्र-चरित्र को देखें तो दोनों ही नाटकों में पौराणिक मिथकीय कथा को लिया गया है, वहीं इसके पात्र चरित्र ऐतिहासिक परंपरा से लिए गए हैं। दूसरी ओर सुरेन्द्र वर्मा के तीन नाटकों 'द्रौपदी', 'एक दूनी एक', और 'शकुन्तला की अंगूठी' सुरेन्द्र वर्मा के ऐसे नाटक हैं, जिनकी कथावस्तु और पात्र-चरित्र आधुनिककालीन हैं। इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा के तीन नाटकों को छोड़ कर शेष नाटक मिथकीय पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। जिनका भाव-बोध आधुनिककालीन समाज और व्यक्ति के द्वंद्व, कुंठा और जीवन के भटकाव आदि को ही चित्रित करता है। जबकि मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे' और उनका अधूरा नाटक 'पैर तले की जमीन' आधुनिक कथानक और पात्र-चरित्रों से सृजित हुआ है।

मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में एक विशेष समानता है और वह यह है कि दोनों में ही पात्र के रूप में संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास का चयन किया है। दोनों ही नाटककारों ने कालिदास के जीवन पर आधारित एक मिथकीय कथा के माध्यम से आधुनिक मानव जीवन और उसके संघर्ष को चित्रित किया है। जैसे 'आषाढ़ का एक दिन' का मुख्य पात्र-चरित्र कालिदास है। वहीं सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटक 'आठवां सर्ग' नाटक में कालिदास के जीवन को केन्द्रित कर आधुनिक जीवन की विसंगतियों को दिखाया है। इसके अतिरिक्त 'सेतुबंध' नामक अपने नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने अप्रत्यक्ष रूप से कालिदास के जीवन से नाट्य-कथा को जोड़ा, उसका वर्णन है। कालिदास और ऐतिहासिक पौराणिक परंपरागत आख्यान के माध्यम से आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रस्तुत करना ही दोनों नाटककारों का ध्येय रहा है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

दोनों ही नाटकों में कालिदास एक रचनाकार और एक कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । दोनों कालिदास के माध्यम से आधुनिक मानव और एक रचनाकार के जीवन-संघर्ष को चित्रित करते हैं। किन्तु 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास का जीवन आंतरिक रूप से द्वंदों से घिरा हुआ है। वह निर्णय लेने में एक कमजोर पात्र-चरित्र है। अपने जीवन- लक्ष्य और निजी जीवन के मध्य आधुनिक मानव के समान संतुलन नहीं बना पाता है । जिसके कारण वह अपने लेखकीय जीवन की प्रेरणा और प्रेमिका मल्लिका को खो देता है। वहीं 'आठवां सर्ग' का कालिदास अपने रचनाकर्म के प्रति पूर्णतः वचनबद्ध है। उसकी रचना पर राज्य द्वारा प्रतिबंध लगाने पर उस प्रतिबंध को तो स्वीकार कर लेता है, किन्तु किसी भी प्रकार अपनी रचना में परिवर्तन स्वीकार नहीं करता है, दोष नहीं आने देता है। अतः 'आठवां सर्ग' का कालिदास आधुनिक मानव या उस रचनाकार का प्रतीक है, जो अपने रचनाकर्म के प्रति निष्ठावान है। वह आधुनिक समय में भी अपनी सत्ता के साथ समझौता नहीं करता है। वह इस आधुनिक समय में किसी भी पद-प्रतिष्ठा के प्रति मोह नहीं दिखाता है। जिससे कहीं न कहीं रचनाकार के कर्म और प्रतिष्ठा को जीवित रखता है। अतः दोनों ही कालिदास आधुनिक जीवन या रचनाकारों के जीवन के अलग-अलग पहलुओं को चित्रित करते हैं । मोहन राकेश के कालिदास का चरित्र एक रचनाकार के रूप में समझौतावादी दिखता है, साथ ही द्वंद्वों में घिरे हुए एक संशययुक्त, आत्मकेंद्रित, दुर्बल आधुनिक व्यक्ति का प्रतीक है। वहीं एक रचनाकार और व्यक्तिगत रूप से भी सुरेन्द्र वर्मा का कालिदास दृढ़ निश्चय रखने वाला एक साहित्यकार, एक कवि है। जिसकी जीवन- दृष्टि स्पष्ट है। जो एक साहित्यकार के रूप में सत्ता से समझौता नहीं करता है । वह अपने कवि-कर्म से अंततः भटकता नहीं है। इस रूप में आधुनिक काल में एक रचनाकार और एक व्यक्ति विशेष के जीवन की जटिलताओं, चुनौतियों और द्वंद्वों को दो भिन्न दृष्टियों और पक्षों से दिखाने का प्रयत्न दोनों रचनाकरों ने किया है, क्योंकि आज का आधुनिक रचनाकार या व्यक्ति विशेष कहें तो कहीं समझौतावादी हो चुका है तो कुछ रचनाकार या व्यक्ति आज भी सत्य और अपने कर्तव्य के

प्रति निष्ठावान हैं, परंपरागत रूप से आदर्श जीवन और चरित्र की कल्पना की गई है। उस पर अपने जीवन में अंत तक चलते हैं।

मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में पुरुषों की तुलना में स्त्री पात्रों में परंपरागत चरित्र के साथ -साथ आधुनिक चरित्र के भी दर्शन होते हैं, जैसे दोनों ही नाटककारों के नाटकों में कालिदास के जीवन से जुड़े नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'सेतुबंध' और 'आठवां सर्ग' पर दृष्टि डालें तो जैसे मल्लिका के चरित्र की तुलना 'सेतुबंध' नाटक की प्रभावती से करने पर हम देखते हैं कि दोनों ही पात्रों के चरित्र में परंपरागत और आधुनिक तत्व विद्यमान हैं। जैसे मल्लिका अपने प्रेमी कालिदास को स्वयं राजकवि बनने भेज देती है। जिससे उसके चरित्र में एक त्याग करने वाली परंपरागत नारी का स्वरूप दिखता है। कालिदास को राजकवि बनने के लिए भेजकर खुद की खुशियों का त्याग कर देना मल्लिका के चरित्र को और भी श्रेष्ठ बनाता है। मल्लिका प्रतीक स्वरूप है इस नाटक में, उस भारतीय नारी की जो प्रेम में त्याग जैसी चली आ रही सदियों की परंपरा को चुनती है। प्रभावती के चरित्र में भी एक परंपरावादी और आधुनिक स्त्री की छवि के दर्शन होते हैं। प्रभावती भी अपने प्रेमी कालिदास के अस्तित्व की रक्षा हेतु पिता चन्द्रगुप्त की धमकी के आगे अपने प्रेम का त्याग कर देती है और वाकाटक राजकुमार रुद्रसेन से विवाह करना स्वीकार कर लेती है। अतः मल्लिका और प्रभावती दोनों ही के चरित्र में परंपरावादी स्त्री की छवि देखी जा सकती है।

'आषाढ़ का एक दिन' में मल्लिका के अतिरिक्त मल्लिका की माता अम्बिका के चरित्र में भी आधुनिक स्त्री की छवि देखने को मिलती है। मल्लिका के चरित्र को आधुनिकता की दृष्टि से देखें तो वर्षों तक मल्लिका कालिदास की प्रतीक्षा करने के बाद अपने जड़ हालातों से आधुनिक स्त्री के समान समझौता कर लेती है और नाटक के खल पात्र विलोम से विवाह कर लेती है। आज की आधुनिक स्त्रियाँ प्रेम में असफल हो जाने पर उस रिश्ते को लेकर बहुत चिंतित नहीं होती दिखती हैं। बल्कि अपने जीने की नई उम्मीद तलाश एक नया रिश्ता तलाश लेती हैं। उसी प्रकार मल्लिका अंततः कालिदास से निराश होकर अपनी ज़िंदगी विलोम के साथ विवाह कर बिताने का निर्णय

लेती है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'सेतुबंध' की स्त्री पात्र 'प्रभावती' के चरित्र की तुलना मल्लिका के आधुनिक चरित्र के साथ करें तो प्रभावती के आधुनिक चरित्र का दर्शन नाटक के उस अंक में होता है, जहाँ प्रभावती से पुत्र प्रवरसेन द्वारा कालिदास और उसके विवाहपूर्व प्रेम सन्दर्भ में सवाल पूछने पर प्रभावती का बिना किसी संकोच के उत्तर देना, उसके चरित्र में आधुनिकता को दर्शाता है। अपनी भावनाओं को विवाह के पश्चात् कुँवारी बताना उसके चरित्र की आधुनिक दृष्टि को दर्शाता है। मल्लिका और प्रभावती के सामाजिक जीवन में काफी अंतर होते हुए भी हम देख सकते हैं कि दोनों परंपरागत स्त्री के समान अपने प्रेम संबंध को निभाती हैं। किन्तु जब बात आती है जीवन की कड़वी सच्चाई को स्वीकार करने की तो दोनों एक आधुनिक स्त्री के सामन बर्ताव करती प्रतीत होती हैं। मल्लिका आधुनिक स्त्री के समान जीवन की सच्चाई को स्वीकार कर कालिदास से निराश विलोम से विवाह कर लेती है। दूसरी ओर वर्षों पूर्व जीवन में अपने प्रेमि कालिदास को प्रभावती त्याग चुकी होती है एक दिन जब उसका पुत्र प्रवरसेन उसके कालिदास से प्रेम-संबंधी सवाल पूछता है तो खुद की भावनाओं को आज तक कुँवारी बताना उसके चरित्र को आज की उस आधुनिक स्त्री के निकट लेकर जाता है, जो विवाह पश्चात् अपने जीवन के किसी सत्य को बताने या उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं करती है। 'आषाढ़ का एक दिन' में अम्बिका भी एक आधुनिक स्त्री की ही प्रतीक है जो जीवन में भावनाओं के स्थान पर व्यावहारिकता को महत्त्व देती है। इसलिए वह कालिदास के प्रेम को संशय की दृष्टि से देखती है। विलोम भी उस आधुनिक मानव का प्रतीक है जो अवसरवादी है। वह एक ऐसे आधुनिक मानव को चरितार्थ करता है जिसे इस बात से बहुत अधिक फर्क नहीं पड़ता है कि उसके चरित्र के सन्दर्भ में कौन क्या सोचता है। वह बस उस अवसर की तलाश में रहता है जहाँ पर उसका अपना निजी स्वार्थ सिद्ध हो सके। उसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'सेतुबंध' में चन्द्रगुप्त और 'आठवां सर्ग' नाटक में अमात्य-परिषद् उस आधुनिक स्वार्थी मानव का प्रतीक है जो अपने निजी स्वार्थ में या रूढ़ परंपरागत धारणा को कालिदास जैसे रचनाकार की रचना पर आरोपित करने का प्रयत्न करता है। रचनाकार की रचना की गुणवत्ता जाँच किये बिना उसपर

प्रतिबंध लगा देते हैं या चन्द्रगुप्त के समान अपने राज्य विस्तार की आकांक्षा हेतु अपनी पुत्री प्रभावती की खुशियों का गला घोट देते हैं। अतः मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' और सुरेन्द्र वर्मा का 'आठवां सर्ग' और 'सेतुबंध' नाटक के मध्य आधुनिकता संबंधी जो अंतर दिखता है, वह यह है कि एक आधुनिक रचनाकर या मानव के रूप में कालिदास द्वंद्व में घिरा हुआ रहता है और निर्णय लेने में सक्षम नहीं दिखता है। वह न अपने प्रेम के प्रति समर्पित हो पाता है और न एक शासक के रूप में सफल हो पाता है। जीवन में वह पग-पग पर समझौता करता हुआ एक कवि के रूप में तो सफल हो जाता है, लेकिन अपनी निजी ज़िंदगी या कहें तो आंतरिक जीवन में एक असफल व्यक्ति सिद्ध होता है। वहीं 'आठवां सर्ग' के कालिदास की बात करें तो वह आधुनिक या उस रचनाकार का प्रतिनिधित्व करता है, जो सदियों से अपने रचना कर्म के प्रति प्रतिबद्ध है। जो सत्ता के साथ या अपने जीवन में किसी भी मोड़ पर समझौता नहीं करता है। इन नाटकों के स्त्री-चरित्रों, जैसे मल्लिका या प्रभावती के चरित्र में परंपरा और आधुनिकता की तुलना करें तो दोनों ही समान धरातल पर नाटक के प्रारंभ में एक परंपरावादी स्त्री सिद्ध होती हैं, जो प्रेम में त्याग करती है और अपने जीवन की सारी सुखियों को त्याग कर भी अपने प्रेमी कालिदास के अस्तित्व की रक्षा और निर्माण में सहायक बनती है। वहीं नाट्य-कथानक में जब मल्लिका कालिदास की ओर से निराश हो जाती है तो उसके वियोग में खुद को होम नहीं करती, बल्कि एक आधुनिक स्त्री की भांति जीवन में आगे बढ़ जाती है और विलोम जैसे नाटक के खल पात्र से विवाह कर लेती है। तब वह पूर्णतः आधुनिक स्त्री प्रतीत होती है। वैसे ही प्रभावती भी पुत्र प्रवरसेन द्वारा प्रश्न करने पर निःसंकोच कालिदास से अपने रिश्ते के सन्दर्भ में न केवल बताती है बल्कि अपनी भावनाओं को कुँवारी बताती है। अतः इन दोनों स्त्री-चरित्रों में परंपरा और आधुनिकता का रूप एक समान स्तर पर दिखता है, जहाँ त्याग और समर्पण भी है, जीवन की कटु सच्चाई को स्वीकार करने की आधुनिक स्त्रियों की भांति हौसला और प्रत्युत्तर देने ही हिम्मत भी है।

मोहन राकेश के दूसरे नाटक 'लहरों के राजहंस'(1963) की तुलना सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'(1975) से करें तो ये दोनों नाटक भी मिथकीय पौराणिक कथा परआधारित हैं। ये दोनों नाटक भी अपने मिथकीय ऐतिहासिक पौराणिक कलेवर में परंपरा और आधुनिकता के संवाहक हैं। इन दोनों नाटकों के पुरुष पात्र भी ऐतिहासिक हैं, लेकिन आधुनिक मनुष्य के समान प्रतीत होते हैं जो आज के आधुनिक जीवन में उलझे हुए खुद के अस्तिव को ढूढ़ रहे हैं या अपने ही अस्तित्व के प्रति संशय में हैं। जीवन में अपने विश्वास को खो चुके हैं। इन संदर्भों में 'लहरों के राजहंस' का मुख्य पुरुष पात्र नन्द और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' का मुख्य पुरुष पात्र ओक्काक 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास के समान ही एक कमजोर चरित्र का सिद्ध होता है। जो द्वंद्वों से घिरा हुआ निर्णय लेने में असमर्थ पात्र चरित्र का होता है। जो अपने ही हालात और परिस्थितयों में उलझकर अपनी अस्मिता की तलाश करते हुए संघर्षरत रहता है। नन्द एक तरफ कभी अपने भाई बुद्ध के दिखाए हुए मार्ग पर चलने हेतु प्रेरित होता है तो कभी अपनी पत्नी सुंदरी के रूप-सौंदर्य के मोह-पाश में फंसकर इस सांसारिकता में ही अपने जीवन की सार्थकता मानता है। किन्तु नाटक के अंत तक वह अपने इस द्वंद्व को जीत नहीं पाता है। वहीं ओक्काक भी एक ऐसे शासक का प्रतीक है, जिसका खुद की सत्ता पर पकड़ नहीं है। उसके नौकरशाह उसकी ही जिन्दगी को नियमों और क़ानूनों में उलझाकर उसकी ज़िंदगी की मुसीबतों को बढ़ा देते हैं। एक तरह अमात्य परिषद् द्वारा ओक्काक को इस बात के लिए मजबूर किया जाता है कि वह अपनी पत्नी शीलवती को धर्मनटी बनने के लिए आदेश दे। दूसरी ओर धर्मनटी बनने के पश्चात् शीलवती का परंपरावादी स्त्री चरित्र को त्याग एक आधुनिक स्त्री के समान अपने अधिकार के लिए तर्क करना ओक्काक को एक जटिल और द्वंद्वात्मक स्थित में डाल देता है। नन्द और ओक्काक के चरित्र पर दृष्टि डालें तो दोनों ही आधुनिक मानव के समान प्रतीत होते हैं। जो अपने अस्तित्व की खोज में भटकते रहते हैं। जीवन की सारी भौतिक सम्पन्नता भी उनके अस्तित्व को पूर्ण नहीं कर पाती है। इन दोनों नाटकों के स्त्री चरित्रों की तुलना करें तो सुंदरी और शीलवती दोनों

के चरित्र में परंपरा और आधुनिकता के तत्व दिख जाते हैं। सुंदरी की धारणा है कि पत्नी का सौंदर्य ही पति को उसके प्रति आसक्त रखता है, यह एक परंपरावादी धारणा है जो सुंदरी के चरित्र में दिखती है। सुंदरी यहाँ प्रतीक है आज के उन तमाम आधुनिक स्त्री या पुरुषों की, जो शरीर के माध्यम से जीते हैं। जीवन में बुद्ध के निर्वाण जैसे अपार्थिव जीवन मूल्यों की तुलना में इस भौतिक पार्थिव शरीर को अधिक महत्त्व देते हैं। यदि शीलवती की बात करें तो नाटक के उस स्थल पर जहाँ वह ओक्काक से अपने स्त्रीत्व की बात करती है, धर्मनटी बनने से इनकार करती है और अपने सम्मान, अपनी गरिमा और पत्नी धर्म की बात करती है तो उसके चरित्र में परम्परवादी स्त्री के दर्शन होते हैं। स्त्री जीवन की सार्थकता सिर्फ माँ बनने में नहीं है, उससे बढ़कर है, यह कहकर अपने पति ओक्काक से तर्क करना उसके चरित्र में आधुनिकता को दर्शाता है। इस तरह 'लहरों के राजहंस' और 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' में की तुलना करें दोनों के द्वंद्व में मूलभूत अन्तर इतना है कि 'लहरों के राजहंस' में नन्द और सुंदरी का द्वंद्व, रिश्तों में तनाव, मानसिक और मनोवैज्ञानिक पार्थिव और अपार्थिव संदर्भों में है। वहीं ओक्काक और शीलवती का द्वंद्व और टकराहट उनके मनोविज्ञान को उद्घाटित तो अवश्य करता है किन्तु पार्थिव जरूरतों के संदर्भो में है। 'लहरों के राजहंस' में नन्द और सुंदरी का चरित्र आधुनिक मनुष्य और उसके जीवन में अधिक ठहरता है, जहाँ वे आधुनिक मनुष्य की ही भांति शरीर के माध्यम से जीते हैं और भौतिक सुखों को जीवन का उत्कर्ष मानते हैं। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' का ओक्काक उस औपनिवेशिक संस्कृति का द्योतक है, साथ ही आधुनिक मनुष्य का प्रतीक भी है, जो हर चीज को अपने फायदे के लिए, चाहे वह पत्नी ही क्यों न हो, इस्तेमाल करता है। शीलवती परंपरावादी स्त्री से आधुनिक स्त्री की ओर बढ़ जाती है, जब तक पति के जीवन को अपने जीवन का सत्य मानती है तब तक उसके चरित्र में परम्परवादी व्यक्तित्व दिखाई देता है, किन्तु जब वह अपने शरीर की जरूरतों को मेहसूस करने लगती है, तब वह एक पत्नी के स्थान पर एक आधुनिक स्त्री की भांति उसके शारीरिक जरूरतों और उसकी सार्थकता की बात निःसंकोच करती है।

मोहन राकेश का तीसरा नाटक है 'आधे-अधूरे' इस नाटक में राकेश ने न तो पौराणिक कथा का और न ही ऐतिहासिक पात्रों का चयन किया है। आधुनिक मनुष्य के खंडित आधे-अधूरे जीवन को, उसके आंतरिक द्वंद्वो को चित्रित किया है। वैसे ही सुरेन्द्र वर्मा ने भी अपने नाटक 'द्रौपदी', 'एक दूनी एक' और 'शकुंतला की अंगूठी' में आधुनिक मानव के द्वंद्व, खंडित व्यक्तित्व और काम के प्रति आसक्तियों को बड़ी बेबाकी से दिखाया है। 'आधे-अधूरे' का महेन्द्रनाथ और 'द्रौपदी' नाटक का मनमोहन दोनों के ही व्यक्तित्व के कई रूप होते हैं। जिससे वे अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न लोगों के साथ व्यवहार करते हैं और संबंध रखते हैं। ठीक वैसे ही जैसे आज के आधुनिक समाज में एक ही व्यक्ति के कई चरित्र होते हैं। अतः अपने खंडित व्यक्तित्व के कारण उसके जीवन में न ठहराव होता है और न किसी के प्रति अपनत्व की भावना ही होती है। यह नाटक एक मध्यवर्गीय परिवार के माध्यम से आधुनिक परिवारों के अंदर संबंधहीनता, अजनबीपन, अधूरेपन, आंतरिक संघर्ष आदि को विविध स्तरों पर चित्रित करता है। स्त्री पात्रों में आधे-अधूरे की मुख्य पात्र सावित्री है और 'द्रौपदी' नाटक की मुख्य स्त्री पात्र सुरेखा है। सावित्री के चरित्र में परंपरागत चरित्र भी नजर आता है, जो आधुनिकता के साथ समाहित होकर आता है। पृथक रूप में नहीं। सावित्री के चरित्र पर दृष्टि डालें तो वह एक आधुनिक नारी प्रतीत होती है, जो अपनी जिम्मेदारि यों का निर्वहन करने के साथ-साथ अपनी आकांक्षाओं को भी जीना चाहती है। तभी वह घर की ख़ुशियों के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन की भी परवाह करती है। वह घर और घर के लोगों के लिए जितना कर सकती है, करती तो है, साथ ही खुद की खुशियों को भी तलाशती है, जिसके लिए वह कई पुरुषों के संपर्क में भी आती है। किन्तु सबके व्यक्तित्व में वह एक अधूरापन ही पाती है। इस दृष्टि से जब वह माँ, पत्नी या घर की मुखिया होने के नाते सबकी परवाह करती है तो परंपरावादी स्त्री चरित्र में दिखती है, किन्तु खुद के लिए एक घर की तलाश में कई पुरुषों से जुड़ती है या उनसे संबंध स्थापित करती है, तो आधुनिक स्त्री ही प्रतीत होती है। सुरेन्द्र वर्मा अपने नाटक 'द्रौपदी' में एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार की कथा प्रस्तुत करते हैं, इस दृष्टि से सुरेखा का अपनी बेटी अलका के संबंधों

के बारे में जानना और उससे भी बढ़कर अपनी ही बेटी को अनैतिक संबंध के लिए प्रोत्साहित करना, उसके चरित्र में आधुनिक मानव के उस चरित्र को दर्शाता है, जहाँ आज का मानव भौतिक सुखों को किसी भी संबंध और उसकी गरिमा से बढ़कर अधिक महत्त्व देने लगा है। दोनों ही नाटकों में इन मुख्य पात्रों के अतिरिक्त और भी कई ऐसे पात्र हैं जो कमोबेश आधुनिक जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करते हैं। अतः 'आधे-अधूरे' नाटक आधुनिक मध्यवर्गीय विघटित परिवार और 'द्रौपदी' नाटक उच्च मध्यवर्गीय परिवारों के विघटन को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। दोनों नाटक में एक मूल अन्तर यह है कि 'आधे-अधूरे' में पारिवारिक विघटन उस स्तर तक नहीं दिखता है, जितना कि 'द्रौपदी' में देखा जा सकता है। 'आधे-अधूरे' में सावित्री और महेन्द्रनाथ के परिवार में जैसे पुत्र की पिता के प्रति सहानुभूति दिखती है और कमोबेश बड़ी बेटी बिन्नी का लगाव अपनी माता सावित्री से भी दिखता है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि 'आधे-अधूरे' में कहीं न कहीं पारिवारिक मूल्यों का कुछ अंश उनके रिश्तों में बचा हुआ देखा जा सकता है। किन्तु द्रौपदी नाटक में पारिवारिक विघटन पूर्णतः अपने चरम पर देखा जा सकता है। जिसमें न कोई मर्यादा है, न परंपरागत पारिवारिक मूल्यों के प्रति आस्था दिखती है। बस जीवन की केंद्रीय धुरी काम-केन्द्रित देखी जा सकती है। जो आज के आधुनिक समय की एक बड़ी विसंगति है। जिसे नाटककार ने सीधे अभिधा शब्दों में चित्रित किया है।

सुरेन्द्र वर्मा का एक नाटक है 'शकुंतला की अंगूठी'(1990)। यह नाटक आज के युवा और उनके मध्य काम केन्द्रित प्रेम को व्यंजित करता है। जिनमें न कोई ठहराव है न स्थायित्व। जहाँ प्रेम-संबंध का एक ही उद्देश्य प्रतीत होता है शारीरिक-सुख। नाटक के दो मुख्य पात्र हैं कुमार और कनक। इनके प्रेम- संबंधों के चित्रण से नाटककार ने आधुनिक प्रेम के कुत्सित स्वरूप को व्याख्यायित किया है। कुमार और कनक दोनों ही एक रंगशाला में मिलते हैं। दोनों में प्रेम, कनक के शंकाओं और इच्छाओं के द्वंद्व में कायम होता है, क्योंकि कनक प्रेम में पहले धोखा खा चुकी थी। इसके पश्चात् भी दोनों में प्रेम होता है और शारीरिक रिश्ते बनते हैं। फिर कुमार कनक को यूँ छोड़कर चला जाता

है, पीछे कनक गर्भवती हो जाती है, किन्तु कनक कुमार के जाने पर अपनी ज़िंदगी से मायूस नहीं होती है। सुदर्श से विवाह कर लेती है। जो उससे बहुत प्रेम करता है और किसी भी परिस्थिति में उसे अपनाने के लिए राजी रहता है। सुरेन्द्र वर्मा के इस नाटक की तुलना मोहन राकेश के 'आधे-अधूरे' नाटक से कर सकते हैं। सावित्री हो या कनक या सावित्री की बड़ी बेटी बिन्नी कही न कहीं ये सभी आज की वे आधुनिक स्त्रियाँ हैं, जो घर की खोज में सबंध स्थापित करती हैं। लेकिन आज काएक सच यह भी है कि व्यक्ति आंतरिक रूप से इस प्रकार द्वंद्वात्मक अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहा है कि वह अपने जीवन का सही मार्ग और साथी तय नहीं कर पाता है । यांत्रिक और भौतिकतावादी समय में लोग क्षणिक सुखों के पीछे अधिक भाग रहे हैं। अतः आज का व्यक्ति आन्तरिक रूप से टूटा हुआ, खंडित और व्याकुल है। सावित्री के लिए चाहे पति महेन्द्रनाथ हो, जगमोहन हो जुनेजा हों, सिंघानिया हो या कनक के लिए उसका प्रेमी नील या कुमार। यहाँ सभी यह तय करने में असमर्थ होते हैं कि किसके साथ अंततः ज़िंदगी जीनी है। अतः किसी न किसी कारण रिश्ते बनते-बिगड़ते रहते हैं और फिर एक नए रिश्ते और एक घर की तलाश में भटकते ही रहते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा का अगला नाटक 'एक दूनी एक'है। यह नाटक उच्च-मध्यवर्गीय समाज के स्त्री-पुरुष के संबंधों और व्यक्तित्व को व्याख्यायित करता है। जिसमें प्रेम-संबंधो में धोखा, विवाह से पूर्व और विवाह के पश्चात् अनैतिक संबंध, विवाह जैसी प्रथा के प्रति अरुचि आदि को विस्तार पूर्वक चित्रित किया गया है। मोहन राकेश के नाटकों के चरित्रों की तुलना में इसके सभी पात्र चरित्र उत्तर-आधुनिक समाज और परिवार के प्रतीत होते हैं जिनका व्यक्तित्व खंडित और भ्रष्ट है। उनकी ज़िंदगी में अकेलापन है। वैवाहिक जीवन के प्रति कोई विशेष आस्था नहीं है। इनका व्यक्तित्व द्वंद्वों से घिरा हुआ है। पहले प्रेम संबंध बनाते हैं और फिर शारीरिक संबंध। अंत में संबंध तोड़ लेते हैं। संवेदना और प्रेम इनकी ज़िंदगी में निरर्थक भावना मात्र बनकर रह गए हैं। अतः उत्तर-आधुनिक काल में इनकी ज़िंदगी एक यांत्रिक जीवन बनकर रह गई है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा। कहने का अर्थ

यह है कि कमोबेश मोहन राकेश के नाटकों की स्त्री हो या पुरुष सभी पात्रों के चरित्र में आधुनिकता के लक्षण तो हैं ही, किन्तु उनके चरित्र में परंपरागत संस्कार कहीं न कहीं जीवित हैं, ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों को देखें तो प्रेम, भरोसा, आस्था जैसी चीज परिवार और समाज से प्रायः लुप्त होती दिखती हैं। इसके अतिरिक्त मोहन राकेश के अधूरे नाटक 'पैर तले की जमीन' और सुरेन्द्र वर्मा के 'कैद-ए-हयात' और 'रति का कंगन' नाटक में आधुनिक मनुष्य के बाह्य और आंतरिक जीवन-संघर्ष एवं द्वंद्व को देख सकते हैं। आधुनिक भोगवादी जीवन कैसे सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों को और उसकी गरिमा को खंडित कर चुका है, यह 'पैर तले की जमीन' और 'रति का कंगन' नाटक में देखा जा सकता है। भारतीय परंपरा में जो सामाजिक ढाँचा बनाया गया था, जहाँ स्त्री को देवी रूपी माना गया था, जिसका सम्मान करना हर किसी का धर्म बताया गया है, वहाँ 'पैर तले की जमीन' नाटक में क्षणभर के सुख के लिए एक पल में उसकी अस्मिता को लूट लेने की आकांक्षा दिखाई गई है। वहीं 'रति का कंगन' में आधुनिक मनुष्य के भोगवादी जीवन को बड़े निकट से दिखाया गया है। उच्च शिक्षा-जगत में गुरु-शिष्य का पवित्र रिश्ता और उसकी गरिमा आज किस प्रकार निकृष्ट हो चुकी है उसका सटीक चित्रण किया गया है। अतः यांत्रिक भोगवादी आधुनिक विचारधारा ने आज मनुष्य को निकृष्टता के सबसे निचले पायदान पर लाकर खड़ा कर दिया है। जहाँ जीवंत परंपरा अपना मूल्य खोती जा रही है और मूल्यहीन आधुनिकता को ग्रहण करना ही आधुनिक मानव जीवन का लक्ष्य बनता जा रहा है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा स्वातंत्र्योत्तर ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने अपने नाटकों में आधुनिक मानव के अधूरेपन, अंतर्द्वंद्व, अकेलेपन, और कुंठित जीवन आदि को कुछ नाटकों में पौराणिक मिथकीय कथा और ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से चित्रित किया है तो कुछ नाटकों में सीधे आधुनिक नाट्य-कथा और चरित्रों के माध्यम से व्याख्यायित किया है। दोनों ही नाटककारों के नाटकों में परंपरा और आधुनिकता के तुलनात्मक अध्ययन की बात करें तो मोहन राकेश ने तीन नाटकों का लेखन किया है। जिनमें दो नाटक मिथकीय पौराणिक कथा पर

आधारित हैं। जिनके पात्र परंपरागत ऐतिहासिक पात्र हैं और एक नाटक 'आधे-अधूरे' का कथानक और पात्र दोनों ही आधुनिक समय के हैं। वहीं सुरेन्द्र वर्मा ने कुल दस नाटकों का सृजन किया है। जिनमें सात ऐसे नाटक हैं, जो कि मोहन राकेश के उन नाटकों के ही समान तथा मिथकीय पौराणिक कथा पर आधारित हैं। जिनके पात्र परंपरागत ऐतिहासिक पात्र हैं और तीन नाटक आधुनिक जीवन और उनकी विसंगतियों को चित्रित करते हैं। अंततः मोहन राकेश और सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में परंपरा और आधुनिकता का तुलनात्मक अध्ययन करने पर जो दृष्टि विकसित होती है, वह यह है कि दोनों ही नाटककारों के मध्य आधुनिक और उत्तर-आधुनिक नाटकों का सफ़र तय होते दिखता है। मोहन राकेश के नाटक आधुनिक नाटक कहे जाते हैं तो सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता दोनों ही नाटक देखी जा सकती हैं। आधुनिकता में जहाँ भावना, नैतिकता, परंपरा, मर्यादा आदि के प्रति मोह समाप्त होता दिखता है वहीं उत्तर-आधुनिकता में इन सभी भावनाओं का मूल्य ही समाप्त हो जाता है। जैसे मोहन राकेश के नाटकों और उनके पात्रों के चरित्रों में भावना, नैतिकता, परंपरा, मर्यादा आदि खंडित होती दिखती हैं। किन्तु सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में तो इनका मूल्य ही नगण्य होता चला जाता है। मानव अंतर्द्वंद्व, अकेलापन और कुंठित जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। तभी इनके यहाँ पूरा जीवन-मूल्य ही बदला हुआ है। नाटकों में यौन कुंठाएं एवं स्वछन्द यौन-संबंध इनके कई नाटकों को उत्तर आधुनिक नाटकों में श्रेणीबद्ध करता है। मोहन राकेश के नाटकों में, पात्र-चरित्र द्वंद्व में है, खंडित है, परिवार विघटित होता दिखता है, जैसे'आधे-अधूरे' नाटक में लेकिन पूर्णतः टूटा या बिखरा नहीं है, आशा और आस्था कुछ एक चरित्र में शेष दिखती है। लेकिन सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में पूर्णतः विघटित पारिवारिक जीवन की विसंगतियों और खंडित व्यक्तित्व को देखा जा सकता है जैसे 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'एक दूनी एक', 'शकुन्तला की अंगूठी', 'रति का कंगन' आदि द्वंद्व, अनास्था, यौन-कुंठाओं आदि की शीर्ष अवस्था को चित्रित किया गया है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर मोहन राकेश ने जिस आधुनिक जीवन की विसंगतियों को कहने की नाट्य-परंपरा को शुरू की थी, उसी परिपाटी

का अनुसरण करते हुए सुरेन्द्र वर्मा भी दिखते हैं। जहाँ दोनों के नाटकों में परंपरागत जीवन मूल्यों को टूटते और आधुनिक मानव के खंडित जीवन को देखा जा सकता है। मोहन राकेश मिथकीय ऐतिहासिक तथा मध्यवर्गीय नाट्य कथा के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति के बाह्य और आंतरिक जीवन के संघर्ष को ही चित्रित किया है। सुरेन्द्र वर्मा ने भी मिथकीय ऐतिहासिक तथा मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को ही चित्रित करते हैं, किन्तु वह उच्च मध्यवर्गीय लोगों के भी उलझे-टूटते रिश्तों और बिखरी संवेदनाओं को भी अपने नाटक में स्थान देते हैं। दोनों के नाटकों में मूल अंतर इतना है कि मोहन राकेश अपने नाटकों के माध्यम से आधुनिक मनुष्यों के विघटित जीवन के लक्षण को चिन्हित किया था, उसके पूर्णतः टूटे जीवन मूल्यों को सुरेन्द्र वर्मा और भी बेबाकी से अपने नाटकों में चित्रित करते हैं। जिसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है, निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है।